कुपोषण की गिरफ्त में कोरवा व दलित

अरविंद

आदिम जनजातियों के बारे में अध्ययन बताते हैं कि वे कृषि पूर्व समाज का आज भी प्रतिनिधित्व करते हैं. लेकिन सदियों के समाजीकरण व संस्कृतीकरण की प्रक्रिया ने चेरो व खरवारों को जहां स्थानीय जाति संरचना में बतौर क्षत्रिय शामिल करा दिया, वहीं आदिम जनजातियों ने पारंपरिक झूम व दाहा खेती को छोड़ कर सामान्य खेती विस्तार में अपनी भूमिका निभायी. मेराल पहाड़ियों व पठारों से घिरा प्रखंड है. डालटनगंज से गढ़वा टाउन जाने के लिए 35 किमी यात्रा करनी पड़ती है. शाहपुर पुल, बांके, बांसडीह, डंगहराहा, तिलदाग, टंडवा से रंका मोड़ से होते हुए पहुंच सकते हैं. फिर चिनिया मोड़ से दस किमी पर पेस्का पड़ता है. हमारे साथी महेंद्र बताते हैं कि पास के कुसमही, गोबरदहा, भवराहा गांवों में कोरवा, किसान व परहिया आदिम जनजातियां है. मगर पठारी व दुर्गम इलाकों में उनके रिहायश से उन तक पहुंचना सुगम नहीं.

झारखंड ट्राइबल वेलफेयर रिसर्च इंस्टीट्यूट ने 2002-03 के सर्वेक्षण में पलामू में कोरवाओं की संख्या 2126 तथा गढ़वा में 18144 बतायी है. झारखंड में एक लाख बानबे हजार से अधिक आदिम जनज़ाति लोग है, जो कुल आबादी का मात्र 0.72 फीसदी हैं. इनकी औसत मासिक आमदनी 700 से हजार रुपये है. उपर्युक्त सर्वेक्षण के अनुसार मेराल के छह गांवों में 473 कोरवा हैं और 32 परहिया/परैया.

कुसमही पहुंचने के रास्ते में कोरवाओं से बात होती है. 65 साल के केश्वर परहिया कहते हैं कि 'इ बार हम 8 केजी बूट बिनल रही, पर होखल केवल एक किलो. खाये के व्यवस्था स्थायी नइखे, ऐहिजा कई रोज व भर दिन उपवास के रहे पड़े हइ.' इक्का-दुक्का मैट्रिक पास कोरवाओं में 21 साल के मानिकचंद कोरवा बताते हैं कि कुसमही में 50 घर कोरवा के, बीस घर परहिया के और चार-पांच घर दलितों के हैं. लोग काफी कम खेती करते हैं. लोग लकड़ी काट कर बेचते और जीते हैं. जंगल से कंदमूल, गेठी, कोइनार साग आदि खाकर गुजारा करते हैं. काम करनेवाले युवक जामनगर, कटनी जैसे दूर के राजस्थान व गुजरात राज्यों में जाते हैं. वह भी ज्यादातर किसी एजेंट के जरिये. यहां अंतरजिला से लेकर अंतरदेशीय पलायन आम है. 20 साल का अजय कोरवा गर्व से कहता है कि वह मिट्टी काटने का रोजगार करने राजस्थान व आंध्र प्रदेश हो आया है. वह बताता है कि 2006-07 में एसडीओ आये थे, उसके बाद उसके समकक्ष या बड़ा अफसर कभी गांव नहीं आया. राशन में 35 किलो की जगह केवल 30 किलो ही मिलता है. डीलर कहता है कि उसे सात किमी अनाज बांटने के लिए आना पड़ता है, इसलिए वह ऐसा करता है. रमेशर परहिया कहते हैं कि गांव में स्वास्थ्य केंद्र खुल जाये तो काफी लाभ होगा. डायरिया, टीबी, मलेरिया यहां की बड़ी बीमारियां हैं.

यहां बिरसा मुंडा आवास योजना के तहत करीब पचास आवास बनाये गये. पर घटिया मैटेरियल से काम होने के कारण आवास रहने लायक नहीं हैं. शंकर बताते हैं कि हम सब जंगल व पहाड़ से थोड़ा लकड़ी काटते हैं. पर वन विभाग हमें ही परेशान करता है. एक समय तो 35 लोगों को बंद कर दिया था. सियाराम परहिया कहते हैं कि 'अब कोनो भूखे मरे, तो अरज शिकायत करना फिजूल ह. काहे कि जो मर गया, उ आयेगा तो नहीं. फिर काहे परेशानी मोल ले.'

कुसमही से जाते वक्त एक बढ़िया खबर भी हाथ लगती है. लालजी कुंवर की बेटी अनिता कुश्ती प्रतियोगिता में राज्य से निकल कर दिल्ली तक पहुंच गयी है. मैट्रिक पास इस लड़की ने गढ़वा केसरी के खिताब के अलावा कई मेडल जीते हैं. शायद आदिम जनजातियों में वह ऐसी अकेली लड़की है.

कुसमही के बाद हम गेरुआसोती पहुंचते हैं, जहां चंद दिनों पहले ही दो मौत हुई है. यहां रामलाल ने 2010 के अप्रैल के दूसरे सप्ताह में अपने भतीजे रामबचन को खोया है. वह भूख व कुपोषण से मरा. उसकी मां भानमती बताती हैं कि 'इलाज करने के बावजूद हम ओकरा न बचा पइली. बचाते भी कइसे. घर-आंगन रेहन रखे हैं बीमारी में.' सोमरिया देवी कहती हैं कि 'अहरा के लिए मनरेगा में हम तीन रोज काम कइली, चौथा दिन वापस घुमा देलन कि अब औरत लोगों का काम नहीं है. अब तो भूखे मरे के अलावा दूसरा चारा नइखे देखात.' बताते चलें कि मनरेगा में सफलता के पैमाने पर झारखंड का कार्यदिवस औसत महज 48 दिन है. राजेश बताते हैं कि हाल में स्वास्थ्य कैंप लगा था. लेकिन पेट दर्द हो या बुखार या कोई और बीमारी, सबको एक जैसी दवाइयां जैसे बेडेक्स, बस्टन, फ्लोक्सिबेक्ट दे दी गयीं.

भूखों-नंगों के ऐसे इलाकों से विदा होते वक्त **साहित्यकार फणीश्वरनाथ रेणु** की अकाल पर लिखे रिपोतार्ज के कुछ अंश याद आते हैं.

'चुल्हवा में की पक्कत हलै? धुइयां देखैहियेक'

'पक्के के की है जे पकतई! लड़कोरिया लेल गोइठा में अगिया सुलगत हय, ओकरे धुइयां...'

'पक्के के कुछ नअ हउ त ई बचवा सब की खइतउ? की गे तोर की नाम हौ? बोल ना, लजावे है काहे? ई लड़का केकर है?..बीमार है? ओ?.....भुक्खल है, खाये बिना एकर एइसन दसा है.....ओ...'

.....'सौर घर से झांक कर देखती है, एक सूखी, पीली, युवती माता. चिथड़े में लिपटे हुए शिशु की ओर दिखला कर अपनी बहिन से हंस कर कहती है-''ई अकलवा के भी छापी उतरवा दे.....'

अकाल और सूखा में जन्मे बचे हुए बच्चों के सही नाम 'अकालू' और 'सुखाड़ी' नहीं तो क्या होंगे?

.....'भात खइला कतेक दिन भेलउ?'

इस सवाल पर सभी हंस पड़ी. एक बोली.... ऐ हे ए...! आसिन में भात खैलिए.....!

(सीएसडीएस के इनक्लूसिव मीडिया फेलोशिप के तहत लिखी गयी रिपोर्ट.)

PRABHAT KHABAR
28 JUNE, 2010
RANCHI